‘तबले के घराने : परंपरागत वादन प्रणाली एवं नवीन परिवर्तन’

मार्गदर्शक :
प्रो.डॉ.अजय अष्टपुत्रे
दि महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय
वडोदरा (गुजरात)

दिपक प्रकाश दाभाडे
शोधार्थीः तबला विभाग
दि महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय
वडोदरा (गुजरात)

सार–संक्षेप :

भारतीय संगीत, परंपरा से चला आ रहा है और एक पीढ़ी से दुसरी पीढ़ीतक इसे कई पीढ़ीयोने संभालकर रखा हुआ है। संगीत में कई पीढ़ीयोंसे चल रही इस विशिष्ट प्रकारकी शैली व रचनाओंको घराना नामसे संबोधित किया जाता है। घरानो में गुरू के मुख से प्रत्यक्ष रूप में ज्ञान मिलता है इसलिए इसे ‘गुरूमुखी’ कला भी कहा जाता है। तबले के घरानोने भी इस परंपरा को अपनाया है। तबले के घरानो में कुछ ऐसे विद्वान कलाकार हुए जिन्होंने संगीत की विशिष्ट शैली का निर्माण किया तथा उनके शिष्य और पारिवारिक सदस्योंने उस परंपरा को आगे बढाया। तबले के घरानो में प्रमुख दो बाज निर्माण हुए उनमें से दिल्ली घराने ने बंद बाज का स्वीकार किया तो लखनौ घराने ने खुले बाज को अपनाया और अन्य चार घरानों में अजराडा घराना दिल्ली के शागीर्द घराने के नामसे निर्माण हुआ। फर्रूखाबाद तथा बनारस घराना लखनौ घराने के शागिर्द घराने के नाम से जाना जाता है। दिल्ली से कुछ अलग पंजाब घराने ने खुले बाज को अपनाया।

तबला वादन में प्रमुख दो प्रकार की रचनाओंका प्रस्तुतीकरण किया जाता है जिसे विस्तारक्षम रचना और पूर्वसंकल्पित रचना कहा जाता है। परंपरा से चल रही घरानों की वादन प्रक्रिया इनका अपना एक अलग सौंदर्य है। परंपरा की इस वादन प्रक्रिया में प्राचीन गुरू–शिष्य परंपरा और आज की संस्थागत शिक्षा पध्दती तथा वैयक्तिक संगीत विद्यालयों का घरानों की परंपरा पर क्या असर हुआ ? तबला वादन प्रस्तुतीकरण में वर्तमान में कोनसे नवीन परिवर्तन हुए ? परंपरागत वादन प्रस्तुती और आजकल होनेवाले घरानो के तबला वादन प्रस्तुतीकरण में कोनसे बदलाव हुए ? ये प्रस्तुत शोधपत्र द्वारा उजागर करने

का मेरा प्रयास है। तबले के घरानो की परंपरा की वजह से ही आज हमारे भारतीय अभिजात संगीत की परंपरा जीवित है, इस संगीत की परंपरा को जीवित रखना हमारा कर्तव्य है और आगे कि पिढीतक इस परंपरा को बनाये रखने का प्रयास 'तबले के घराने : परंपरागत वादन प्रणाली एवं नवीन परिवर्तन' इस शोधपत्र द्वारा मैंने किया है। प्रस्तुत शोध–पत्र को लिखने के लिए माध्यमिक स्त्रोतों के अन्तर्गत गुरूजन–विद्वानों के विचार तथा विविध ग्रंथो का आधार लिया गया है।

(मुख्य शब्द : घराना, परंपरा, शैली, रचना, परंपरागत, संगीत, बाज, तबला, वादन, प्रस्तुतिकरण)

शोधपत्र –

घरानों का निर्माण –

संगीत में घराना शब्द अपने व्यावहारिक जीवन में उपयोगि होने वाले 'घराना' शब्द से साधर्म्य रखता है। रिती–रिवाज, परंपरा और खानदान को लेकर भी 'घराना' शब्द रूढ है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में घराना इस परंपरा का निर्माण मध्यकाल के समय मुस्लिम शासनकाल में हुआ ऐसा कहा जाता है। संगीत के क्षेत्र में शास्त्रीय गायन, कथक नृत्य, सितार और तबला इन शाखाओं में अलग–अलग घराने निर्माण हुये और अपनी इस खास शैली एवं परंपरा को इन घरानों के कलाकारोंने बाखुबी संभालकर रखा और उसे अच्छी तरह से निभाया तथा पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढाने का कार्य किया। घराने के अन्तर्गत किसी विशेष गुरू के वंशज तथा शिष्यो का समावेश होता है, जिन्होंने अपने घराने की विशेषता तथा शैली को प्रचलित और प्रसारित किया है। संगीत कि धारा में 'घराना' एक विशिष्ट गायन–वादन एवं नृत्य शैली का सूचक माना जाता है। यह शैली जिस कलाकार द्वारा शरू होती है, उसे उस घराने के संस्थापक के रूप में पहचाना जाता है और उसी कलाकार का नाम या निवास स्थान का नाम उस घराने से जोडा जाता है। किसी घराने को तभी प्रतिष्ठित माना जाता है जब कई पीढ़ियों तक ये सिलसिला जारी रहे, कम से कम तीन पीढ़ियों तक गुरू–शिष्य परम्परा का होना आवश्यक होता है।

संगीत में घराना याने कई पीढ़ियोंसे चल रही विशिष्ट प्रकारकी शैली व रचनाएँ है और इन शैलीयों को ही घराना नामसे संबोधित किया जाता है। पं. आमोद दंडगे अपनी

मराठी अनुवादीत 'सर्वांगीण तबला' इस ग्रंथ में घराने के संदर्भ में कहते हैं की "विशिष्ट विचारप्रणाली अर्थात रचना व त्या विचारांना सौंदर्यपूर्णरित्या व अतिशय प्रभावीपणे प्रकट करू शकणारी निकासपध्दती (शैली) यांचा सुरेख मिलाफ म्हणजे घराणे होय"।[1]

घरानों का सफर 'नयीसोच' या फिर किसी 'विशिष्ट प्रकार की शैली' के साथ शुरू हुआ होगा। कोई भी नये विचार की कल्पना जब पहली बार प्रकट होती है तो वह नाविन्यता प्रदान करती है लेकिन वही विचारकल्पना किसी विशिष्ट शैलीद्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी व्यक्त होती रहती है तो वह एक नयी शैली के साथ एक घराने में तबदील हो जाती है और यह नये विचार, नयी सोच, तथा विशिष्ट प्रकारकी नयी शैली ही तबले के घरानों को निर्माण करने में मदतगार साबीत हुयी होंगी"।[2]

"पं. मुकुंद भाले जी के अनुसार 'तबले के विभिन्न घरानों का विकास दरअसल तबले की बनावट से जुडा है। तबले की बनावट में जैसे–जैसे परिवर्तन होता गया, वैसे वैसे तबले की नादात्मकता और उससे उत्पन्न ध्वनियों में अन्तर आता गया। इन सारी बदली हुयी खूबियों को सम्मेलित करने के प्रयास से ही नये घरानों का जन्म हुआ"।[3] मनुष्यप्राणी हमेशा से ही असंतुष्ट रहा है और मनुष्यकी यही असंतुष्टता तथा दुसरो से कुछ अलग करने की वृत्ती ही इन घरानों के निर्माण की वजह हो सकती है। विशिष्ट प्रदेश की ऐतिहासिक, भोगोलिक एवं राजकीय परिस्थितियाँ भी इनमें समाविष्ट हो सकती है। तबले के सभी घरानों के बुजुर्ग तबला वादकोंने अपने–अपने घराने की खासीयत दर्शाने के लिए अनेक प्रकारकी विशेष रचनाएँ बनाई और इन रचनाओं को बजाने के निकास विधी में परिवर्तन करके अन्य घरानो से अलग अपनी शैली का निर्माण किया। कई विद्वानोंदवारा कहा जाता है कि किसी विशिष्ट शैली को लगभग तीन पीढीयों तक चलाने के बाद ही इन्हे किसी घराने का दर्जा प्राप्त होता है।

तबलावादन में विस्तारक्षम रचनाएँ एवं पूर्वसंकल्पित रचनाएँ बजाई जाती है जिनमे पेशकार, कायदा, रेला, टुकडा, मुखडा, मोहरा, गत, परन आदि रचनाएँ है परन्तु इन सभी रचनाओंका विभिन्न घरानों में अलग–अलग महत्व है, बजाने का तौर–तरीका अन्य घराने से अलग है। जैसे दिल्ली घराने में कायदे, रेले जैसे विस्तारक्षम रचनाओं को अधिक महत्व दिया गया है, तो फर्रूखाबाद घराने में रौ, गत, चक्रदार टुकडे और चाला या चलन जैसी रचनाओंको अधिक बजाया जाता है। बनारस घराने में परन, बाँट, गत, फर्द, और लडी

आदि रचनाएँ इस घराने की खासीयत है। सभी घराने के तबला वादकोंने अपनी विशिष्ट शैली के साथ इन रचनाओंकी सौंदर्यता में वृद्धि करके अपनी शैली को अगले पीढ़ीतक आगे बढाया। इस तरह भारतीय संगीत में आज विविध घरानों का अस्तित्व दिखाई देता है और अपनी खास विशेषता की वजह से ही सभी घराने एक दूसरे से अपनी अलग पहचान बनाने में कामियाब हुए है।

परंपरागत वादन प्रणाली –

भारतीय संगीत की एक खास विशेषता है याने वो परंपरा से चलती आ रही है। हमारे पास कितनेही बडे घरानेदार कलाकार क्यों न हो, लेकिन उनमेंसे कई कलाकर अपनी सीखी हुयी कला के अलावा अन्य किसी भी शिक्षा से उनका कोई नाता नही होता था तथा ये कलाकार जादा पढे लिखे भी नही होते थे तबसे केवल कुशाग्र स्मरणशक्ति, एकाग्रता एवं मेहनत के जोरपर ही सभी कलाओं को संभालकर रखा जाता था एवं सीखा जाता था। भारतीय संगीत खासतौर से गुरूमुख याने गुरू के सामने बैठकर लिया जाता है और इसेही अधिक महत्व देता है। कोई भी गुरू अपने खुद के गुरू से प्राप्तसंस्कार, शिक्षा एवं कला–प्रस्तुतीकरण की शैली तथा कला–विचारों को आत्मसात करता है। ऐसे प्रस्तुतिकरण के नियम, अनुशासन, परंपरा आदि सबको शिष्य अपने गुरू से ग्रहण करके आगे चलके अपने शिष्यों को प्रदान करते है ।

"कोई भी उस्ताद या गुरू अपने शिष्यों को कोई भी कला सिखाते समय शिष्य अपनी सीखी हुयी कला को इमान ऐतबारसे संभालकर रख सके और उसे प्रामाणिकता के साथ अगले पीढ़ी तक बढा सके इसका भरोसा गुरू या उस्ताद को मिलने के बाद ही उन्हे शिक्षा दी जाती थी और सौ में से नीन्यानवे शिष्य उस कला को कठोर अनुशासन के साथ, एकनिष्ठता तथा गुरू या अपनी कला के प्रति आदरभाव रखते हुए उसका प्रचार एवं प्रसार करते थे। लेकिन इन सौ शिष्यों में से कोई एकही शिष्य या गुरूपुत्रो में से एक ही ऐसा होता है जो कई सालो से चली आ रही इस परंपरा को छोड कर अलग विचार या अलग सोच से प्रेरित होकर किसी खास ऐसी शैली का निर्माण करता है"।[4] अपनी इस नयी शैली को पहचानने के लिए इसे कोई नाम देना आवश्यक था तो इसके लिए घराने के उन्ही वादक कलाकारोंके जन्मस्थान का नाम देते थे या फिर यह संगीत कला जिन राजाश्रय में पली– बढ़ी वहा का नाम उस घराने को दिया जाता था जैसे, दिल्ली, लखनौ पंजाब आदि।

"घरानों के निर्माण के लिए यह आवश्यक था कि उस कला में कोई नयी विशेषता जुडे वह यह भी कि वह परंपरा कम से कम तीन पीढ़ीयों तक अबाधित रूप से चलती रहे तभी उसे नये घराने के रूप में मान्यता मिलती थी। तीन पीढ़ी तक अबाधित रूप से न चल पाने के कारण ही उस्ताद चूडियाँवाले इमामबख्श द्वारा स्थापित भटोला घराना, उ. अमीर हुसैन खाँ द्वारा स्थापित मुंबइ घराना और उ. अहमदजान थिरकवाँ द्वारा स्थापित मुरादाबाद घराने को संगीत समाज की स्वीकृति नही मिल पायी"।[5]

गुरू–शिष्य परंपरा –

घराने वस्तुतः पुराने गुरूकुल के प्रतिक है। प्राचीन कालसे ही सभी प्रकारकी विद्या गुरू–शिष्य परंपरा द्वारा ही लियी जाती थी। गुरू–शिष्य पध्दति ही एक ऐसी पध्दति है जहां संगीत को साधना के रूप में कई वर्षों तक सिखाया जाता है। तभी कहा है "एक साधे सब साधे सब साधे सब जाय"। गुरू–शिष्य परंपरा में कोई भी कला हो उसे सीखने के लिए गुरू के आश्रम में रहना पडता था। शिष्य को बिना किसी शिकायत या बिना कुछ सवाल पुछे गुरू जो भी काम कहे वो करने पडते थे। गुरू के ईच्छानुसार कार्य करते रहना यही एकमात्र उद्देश गुरू–शिष्य परंपरा में रहता था। गुरू–शिष्य परंपरा में गुरू जब सिखा रहे होते है तो शिष्य को लिखने कि अनुमति नही होती थी। पं अरविंद मुलगांवकर अपने 'तबला' ग्रंथ में लिखते है कि "उ. अमिर हुसेन खाँ सहाब अपने शिष्यों को जब सिखाते थे तो उस समय किसी भी शिष्य को कोई भी बंदीश हो उसे लिखने कि इजाजत नही होती थी, खाँ सहाब कहते थे 'बेटा याद कर लेने की आदत रखो। हमारे उस्ताद ने ऐसा ही याद करवाया है इसलिए सात–आठ घंटोका तबला महफिल में बजता है, और कोई भी चीज दुबारा नही बजती"।[6] गुरूशिष्य परंपरा में गुरू अपनी मर्जीनुसार सीखाते थे, जितना समय चाहे सिखाते थे और शिष्य को बिना किसी शिकायत किए गुरू से शिक्षा लेनी पडती थी। गुरू–शिष्य परंपरा में किसी भी एक घराने के शिष्य को दुसरे घराने की कला को देखने की या सुनने, सिखने की अनुमती नही दी जाती थी।

तबले की इन घरानों के निर्माण से एक फायदा निश्चित तौर पे यह हुआ की कलाकारों के बीच स्पर्धा निर्माण हो गयी है और ईर्ष्या कि वजह से और जादा रियाज–मेहनत करके अच्छे तबलावादकों की संख्या में बढोती हुई। कई विद्वान कलाकारों द्वारा कहा जाता है की एक तप तक कठोर मेहनत, रियाज करके ये वादक कलाकार नाम

कमाने के लिए कई गांव या शहर जाकर अपनी कला की प्रस्तुती करते थे और किसी मैफिल में उपस्थित कलाकारों के बीच अपमानित होने के बाद या फिर पराजित हाने के बाद और कड़ी महेनतसे रियाज करके अगली बार फिरसे प्रतियोगिता में सहभागी होते थे।

अलग–अलग घरानों की शैली, उनका वादन वैशिष्ट्य इनका बारिकी से अभ्यास करके अवशोषित करने की कोशिश जिन–जिन तबला वादकोंने की उन्होंने खूब नाम कमाया तथा कई कलाकार तो उस घराने के संस्थापक के रूप में भी आगे आये।

पहले के समय राजाश्रय था कई संस्थानिक, नवाब कला के शौकिन थे, चाहते थे अपने यहाँ दूरदूरसे अच्छे कलाकारोंको अपनी कला प्रस्तुती के लिए अत्यंत आदरपूर्वक बुलाते थे, उनके कला की कदर करते थे, उनका उचित सन्मान करके उनके गुजारे की अच्छी तरहसे खातरदानी करते थे। इस वजह से पूराने कलाकार निश्चिंत थे, हमेशा से ही अपने कला में मग्न रहते थे तथा खुदका और घराने का नाम आगे बढाने में, रोशन करने में और अच्छी शिष्य–परंपरा तयार करने में हमेशाही व्यस्त रहते थे लेकिन आज वो परिस्थिती नहीं रही है इस कारण भारतीय संगीत में चल रही घरानो की यह परंपरा धीरे धीरे कम होती हुई दिखाई दे रही है।

आधुनिक संगीत शिक्षा पद्धती –

भारत में संगीत शिक्षा पद्धती के प्रमुख रूप से दो प्रकार है। एक व्यक्तिगत शिक्षा पद्धती जिसे गुरूकुल पदधती के रूप में जाना जाता है और दुसरी संस्थागत संगीत शिक्षण पदधती, जिसका आरंभ 20 वी सदी में हुआ। ”सन 1901 में लाहौर में की गई ‘गान्धर्व महाविद्यालय’ की स्थापना संगीत शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परिक्षण था जिसमे प्राचीन गुरुकुल प्रणाली तथा आधुनिक संस्थागत शिक्षण प्रणाली का अदभुत समन्वय था। इस विद्यालय में निश्चित समय पर आकर सीखने वाले जिज्ञासुओं के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी विद्यार्थी थे जो आश्रमवासियों के रूप में रह कर गुरू के सानिध्य में दीर्घकाल तक संगीत की साधना करते थे“।[7] इसके उपरान्त संगीतकारों को यह आवश्यकता महसूस हुई की संगीत को सवाँरने के लिए और प्रतिष्ठा दिलाने के लिए संगीत शिक्षण में भी पाठयपुस्तक तथा पाठयक्रम का होना जरूरी है इसलिए इस उद्देश से पं. विष्णू दिगंबरजी ने और मौलाबक्श जी ने अनेक ग्रंथ लिखे और पाठ्यक्रम बनाया। लेकिन संगीत को

गुरूमुख याने गुरू के सामने बैठकर लिया जाता है और इसेही हमारे संगीत में महत्व दिया गया है। गुरू शिष्य को सिखाते है और आगे शिष्य गुरू के रूप में अन्य शिष्यो को शिक्षा देते है यह परंपरा आज भी जीवित है।

"संगीत शिक्षण एक क्रियात्मक विद्या है, जिसे लिखकर या पढ़कर नही सिखा जा सकता है, कोई भी प्रकार का संगीत याने वाद्यसंगीत हो, गायन हो, अथवा नृत्य। गायन गुरू के पास प्रत्यक्ष रूप में कानों द्वारा सुनकर ही सीखा जाता है, अलग–अलग वाद्यो को बजाने की तकनीक भी एकजैसी नही होती है और जिसे देखकर ही सिखना पडता है उसी प्रकार नृत्य को भी देखकर और समझकर ही सीखा जाता है। संगीत एक ऐसी विद्या है कि शिष्य को गुरू के द्वारा सिखाए गए पाठ को उसी समय समझ लेने की आवश्यकता होती है क्योंकि उनकी अनुपस्थिती में उनके सिखाये गये उस पाठ का संदर्भ किसी अन्य किताब में नही मिल सकता है और न किसी अन्य गुरू के पास नृत्य मिल सकता है । हर गुरू की सिखाने की अपनी एक अलग शिक्षा पद्धती होती है" ।[8]

संस्थागत संगीत शिक्षण की एक सीमा होती है। विभिन्न संस्थाओं में जब संगीत शिक्षा सिखाना प्रारम्भ हुआ तब लगा की जो काम गुरू मुख से होता था वो अब संस्थात्मक शिक्षा में भी हो सकेगा। लेकिन यह आसान नही है क्योंकी संस्थात्मक शिक्षा पद्धती में समय की पाबंदी होती है। पहले गांधर्व महाविद्यालय शाम के समय ही चलते थे। लोग दिनभर काम करके शाम को सिखने के लिए आ जाया करते थे। हप्ते में दो दिन या चार दिन याने जब समय मिले तब सिखने के लिए आते थे। लेकिन भविष्य में शिष्य परंपरा तयार कराना अगर लक्ष्य हो तो इस तरह शाम को सीखने से या जब समय मिले तब सीखने से शिष्य परंपरा नही बन सकती है ।

आधुनिक शिक्षा पद्धती के कई अच्छे गुण भी है । हर साल पाठयक्रम का उद्देश सामने होने की वजह से विद्यार्थी और शिक्षक दोनो को भी इसका उपयोग अच्छी तरह से करना चाहिए। "आधुनिक शिक्षा पद्धती में विद्यार्थी अपने विषय के बारेमें मन में कोई भी संदेह हो तो निडर होकर शिक्षक से पूछ सकते है, अनेक ग्रंथो को पढ़ सकते है और अपना ज्ञान बढ़ा सकते है। अनेक गुरू से शिक्षा ले सकते है, संगीत की अनेक कार्यशालाओ में सहभागी हो सकते है, आज के आधुनिक टेक्नॉलॉजी द्वारा इंटरनेट, यु ट्युब जैसे सोशल मिडीया द्वारा भी ज्ञान प्राप्त कर सकते है । आज वेब टयुशन के माध्यम

से भी कई विद्यार्थी संगीत की शिक्षा ले रहे है"।[९] इस तरह भविष्य में ऐसी बहोतसी सुविधाएँ निर्माण हो सकती है और संगीत की शिक्षा का स्तर और वृध्दिंगत हो सकता है । लेकिन हमें, यह नही भूलना चाहीए की गुरू–शिष्य परंपरा एवं संस्थागत शिक्षा पद्धती इन दोनो पद्धतीयों ने ही हमारे संगीत को आज जीवित रखा है।

बाज –

घराना नाम के साथ और एक महत्वपूर्ण शब्द जुडा है जिसे 'बाज' कहा जाता है। घरानों के निर्माण में 'बाज' की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। 'बाज' शब्द का अर्थ बजाने की विशिष्ट पध्दती या शैली को बाज कहा जाता है। सभी घरानों का बाज अलग है, और अपने इस बाज कि वजह से ही अन्य अवनध्द् वाद्य की तुलना वर्तमान में तबला वाद्य का स्थान और समृद्ध होता गया है। तबले में प्रमुख दो प्रकार के बाज है और इन बाज पर आधारीत छह घराने है। सभी घरानों का अपना एक अलग नजरीयाँ है, अलग सोच–विचार है। दिल्ली, अजराडा, फर्रूखाबाद, लखनौ, बनारस, पंजाब यह छह घराने कुल दो बाजपर ही आधारीत है। सभी घरानों का बाज एक दुसरे से अलग है और इन सभी घरानो के वादकों का अपने घराने के साहित्य को वृध्दिंगत करने में और उसे बढाने में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

तबले के विभिन्न घरानोंका वादनशैलीनुसार विकास –

सभी घरानोने अपने उपलब्ध साहित्य सामग्री के मदद से अपने घराने के सुस्पष्ट विचार रखे, घराने की विशेषता दर्शानेवाली अनेक रचनाओं का निर्माण करके शिस्तबध्द साधना के साथ अपने घराने का एक अनुशासन तयार किया तथा अपने घराने कि अन्य घरानों से अलग एक पहचान बनाई। प्रत्येक घराने की ओर दृष्टिपाथ करें तो स्पष्ट है कि प्रत्येक घराने की अपनी सीमा है। उसमे कुछ कमिया भी है, परन्तु उसमें गुणवत्ता भी है। प्रत्येक घराने की अपनी रीति, अनुशासन तथा कुछ कायदे, बन्धन और नियामावली होती है। उसमें अनुशासन एवं स्वंयम का वैशिष्ट्य होता है। तबले में दिल्ली, अजराडा, लखनौ, फर्रूखाबाद, बनारस, पंजाब आदि छह घराने है और सभी घरानों की शैली अलग है। इनके रचनाओंकी सौंदयदृष्टि अलग है और अपनी इस विशेषता की वजह से ही ये घराने अत्यंत लोकप्रिय बन चुंके है।

दिल्ली घराना – संस्थापक–सिधार खाँ ढाढी

इस घराने का उद्‌गम दिल्ली में 18 वी शताब्दी में दुसरे महम्मदशाह के राजकाल में हुआ। दिल्ली घराने में चाँटी का उपयोग अधिकतर किया जाता है इसलिए इस घराने को 'चाँटी का बाज' कहा जाता है। इस घराने में तर्जनी और मध्यमा इन उंगलियों का ज्यादातर उपयोग करने की वजह से इसे 'दो उंगलियों का बाज' भी कहा जाता है। दिल्ली बाज दो उंगलियों के साथही बजाने में अनामिका का भी उपयोग भी किया जाता है। उदा. तिरकिट तिरकिट। दिल्ली बाज बंद बाज होने की वजह से उंगलियों का स्वतंत्र उपयोग तथा बायाँ पर बिना हाथ को उछाले वादन किया जाता है। बायाँ पर दो अक्षर आनेपर उंगलियों में मध्यमा तथा तर्जनी का उपयोग भी किया जाता है। उदा. घेगे। 'के' या 'कि' अक्षर आनेपर मुठठी बंद करके बजाया जाता है। इस घराने में हथेलि के उंगलियों को फैलाकर निकाले गए 'के' अक्षर का उपयोग कम होता है। दिल्ली घराने में विस्तारक्षम रचनाएँ याने पेशकार, कायदा, रेले इ. अधिक क्षमता में बजायी जाती है तथा गत, तिहाई, चक्रदार इनका उपयोग भी किया जाता है। दिल्ली में प्रमुखतः चतुरश्र जाति की रचनाएँ अधिक बजाई जाती है किन्तु तिस्त्र जाति की रचनाओं का भी उपयोग इस घराने में किया जाता है। उदा. ताल–तिनताल के कायदे का मुख निम्नानुसार –

x	"धिटधागेधिनागिना	धिटधागेधिनागिना	धिटधिटधातिटधा	गेनाधागेतिनाकिना	।
2	धातीटधागेनाधागे	धिनागिनाधिटधिट	धिटधिटधातिटधा	गेनाधागेतिनाकिना	।
0	तिटताकेतिनाकिना	तिटताकेतिनाकिना	तिटतिटतातिटता	केनाताकेतिनाकिना	।
3	धातीटधागेनाधागे	धिनागिनाधिटधिट	धिटधिटधातिटधा	गेनाधागेतिनाकिना"	।[10]

अजराडा घराना – संस्थापक – कल्लू खाँ, मिरू खाँ

अजराडा घराना दिल्ली घराने का शागिर्द घराना के नाम से जाना जाता है। इस घराने के वादन में तिस्त्र जाती की रचनाएँ अधिक बजायी जाती है। दिल्ली और अजराडा घराना के वादन पध्दतीमें ज्यादातर अंतर नही है, फिर भी अजराडा घराने के वादकों ने बाज तथा अपनी विचारप्रणाली में अंतर रखा जिस वजह से इस घराने ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण किया। इस घराने में मध्यमा और तर्जनी के साथही अनामिका का भी

उपयोग किया जाता है। दिल्ली में बहोतसी रचनाओं में 'ना' अक्षर जो चाँटी पर बजते है विशेषतः 'धिनागिन' में जो 'गि' अक्षर के बाद 'ना' आता है उसे अनामिका इस उंगलियों की सहायता से स्याही पर बजाया जाता है, जिससे रचना का सौंदर्य और बढ़ गया। इस घराने के तबला वादक कलाकारोंने निकास के साथही (डग्गा) बायाँपर भी अधिक लक्ष केन्द्रित किया और अपना वादन और भी सौंदर्यपूर्ण तथा नजाकतदार होने पर ध्यान दिया, इसलिए इस घराने ने दिल्ली से अलग बायाँ पर मिंडकाम तथा घिसकाम का उपयोग भी अपने वादन में किया। मिंडकाम तथा घिसकाम का उपयोग लाने हेतू अजराडा घराने की बहोतसी विस्तारक्षम रचनाओं में विश्राम दिखाई देती है। उदा. धिंऽऽ धागेना धाऽऽ धागेना .... या घिनाऽ धागेना धात्रक धागेना आदि ।

अजराडा घराने ने और एक नया प्रयोग अपने वादन में किया 'कायदे' की खाली अलग तरह से प्रस्तुत की। कायदे के भरी में जो अक्षर बजते है उन्ही अक्षरों से खाली बजायी जाती है लेकिन इस घराने ने कई रचनाओं की खाली में भरी के बोलों की जगह अन्य बोलो का उपयोग करके खाली को अलग तरीके से सिध्द किया। उदा. ताल–तिनताल के कायदे का मुख निम्नानुसार –

x	घीनाऽधागेना	धात्रकधागेना	धात्रकधातिधा	घीनतीनाकिना ।
2	ताकेतिरकिट	घिनाऽधागेना	धात्रकधातिधा	घीनतीनाकिना ।
0	तीनतीनाकिना	ताकेतिरकिट	ताकेतिटताके	त्रकतिनाकिडनग।
3	तिरकिटतकतातिरकिट	घीनाऽधागेना	धात्रकधातिधा	घीनधीनागीना ।

उपर लिखे हुए कायदे के खाली में 'किनाऽताकेना तात्रकताकेना' इन बोलों को छोडकर 'तीनतीनाकिना ताके तिरकिट' शब्द समुह से काल दर्शाया गया हैं ।

लखनौ घराना – संस्थापक – मिया बक्शु/उ.मोदू खाँ

लखनौ घराने को खुले बाज का प्रमुख घराना माना जाता है। दिल्ली घराने के बाद इस घराने को उद्‌गम हुवा। लखनौ के संगीतपर कथक नृत्य का बहोत प्रभाव था और साथ–संगत के लिए पखावाज वाद्य का उपयोग किया जाता था लेकिन कथक नृत्य में

ततकार और अन्य प्रकार जो द्रुत लय में पेश किए जाते है वो पखावज वाद्य पर बजाना कठिन होने लगा। पखावज से निकलने वाला धीरगंभीर स्वर रसनिर्मिती के लिए पोषक नही हो रहा था जिस वजह से पखवाज का प्रभाव धीरे–धीरे कम होता गया। शृंगार और करूण रस कि निर्मिती कि लिए पोषक, नाजुक और लचिली वादन शैली की कथक नृत्य को बहोत जरूरत थी फलतः साथ संगत के लिए पखावज की जगह तबला इस वाद्य ने ले ली। पखावज वाद्य जोरदार बजनेवाला साज है जिस कारण कथक नृत्य को द्रुत लय में पेश करते समय उसमें प्रस्तुत किया जानेवाले ततकार के साथ पखावज की संगत पिछे पड़ गयी। दिल्ली से जो उस्ताद लखनौ गये उनके मन में यह खयाल आया की क्यों ना दिल्ली बाज में थोड बहोत बदलाव किया जाये और पखावज की अंग की तरह कुछ रचनाओं का निर्माण किया जाये। लखनौ घराने के शुरूवाती के समय के जो भी रचनाएँ है वो पखावज के शैली के जैसी है। आगे लखनौ घराने पर दिल्ली का प्रभाव होने के कारण लखनौ में किनार का भी प्रयोग किया गया।

लखनौ बाज को "थापियाँ" बाज भी कहा जाता है। इस घराने की वादन शैली में दो उंगलियों के स्थान पर पाचों उंगलियों का उपयोग नाद निर्मिती के लिए किया जाता है। इस बाज में तबले पर लव तथा स्याही का उपयोग अधिक किया जाता है। पखावज का प्रभाव होने की वजह से इस घराने में बायाँ (डग्गा) के मेदान पर आघात करने कि प्रथा थी लेकिन कर्णमधुरता बढाने हेतू तथा आवश्यक जगह पर नाजूक और मुलायम ध्वनि उत्पन्न करने कि वजह से मेदान पर खुला आघात करने की प्रथा बाद में कम होती गयी। इस बाज में कायदे, रेले की तुलना में परन, गत, टुकडे, चक्रदार स्तुति परनें इत्यादी का उपयोग अधिक किया जाता है। इस बाज में दुंग, तगन्न, तकधिनतक, घिडान, धेत् धेत् क्डान, धीट तीट आदि बोलसमुहों का प्रयोग अधिक होता है। उदा. ताल–तिनताल में गतकायदे का मुख निम्नानुसार –

x धिनतक	धिनतक	तकतक	धिनतक	।
2 तकधिन	तकतक	धिनतक	धिनतक	।
0 तिनतक	तिनतक	तकतक	तिनतक	।
3 तकधिन	तकतक	धिनतक	धिनतक	।

फर्रूखाबाद घराना – संस्थापक – हाजी विलायत अली खाँ

फर्रूखाबाद घराना खुला बाज के लखनौ घराने का शागीर्द घराना है। इस घराने के संस्थापक उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ लखनौ घराने के खलिफा उस्ताद बक्शू खाँ के दामाद थे और उनके शागीर्द भी थे। लखनौ घराने का तबला इन्हें बक्शू खाँ की बेटी मोती बीबी (हाजी साहब की बीवी) से प्राप्त हुआ किन्तु फर्रूखाबाद घराने ने अपनी एक स्वतंत्र वादन शैली निर्माण कीया ।

फर्रूखाबाद घराने ने अपने वादन शैली में चाँटी और स्याही को समान महत्व दिया। फर्रूखाबाद घराना लखनौ का शागीर्द घराना तथा पखावज का विशेष प्रभाव इस घराने पर होने की वजह से गततोडे, चक्रदार आदि रचनाएँ फर्रूखाबाद में विशेष रूपसे बजाई जाती है। इस घरामें कई विद्वान कलाकार हुये जिन्होंने अपने बाज में पेशकार, कायदा, रेला जैसी विस्तारक्षम रचनाएँ भी बनाई।

फर्रूखाबाद घराने ने स्वतंत्र तबलावादन में बजाये जानेवाली सभी रचनाओंका उपयोग अपने वादन में करके ये घराना एक समृद्ध एवं परिपूर्ण घराना के रूप में आगे आया। इस घराने ने मुलायम नाद के साथ ही जोरदार नाद के उपर भी अपना लक्ष्य केन्द्रित किया। पहले पेशकार सिर्फ दिल्ली बाज में ही बजाया जाता था लेकिन बाद में फर्रूखाबाद ने किया हुआ पेशकार अत्यंत लोकप्रिय हो गया। फर्रूखाबाद में लव, चाँट, स्याही और बायाँ पर मींड़, घुमक आदि अंगोका समावेश किया जाता है। दिल्ली के तुलना में इस घराने के कायदे बडे होते है इसलिए इन कायदों को 'लंबछड' कायदा भी कहा जाता है। 'धिनतक' 'धिनगिन' 'तीटघिडनग' इत्यादी बोलों का उपयोग रेला वादन में किया जाता है। उदा. उदा. ताल–तिनताल में कायदे का मुख निम्नानुसार –

$_x$ घिनधाऽ ऽधिन धगेनधा ऽनधिन । $_2$ तिनाकिन धगेनति नकधिन तिनाकिन ।

$_0$ धगेनधा ऽनधगे नधाऽन धाऽधिन । $_3$ तिनाकिन धगेनति नकधिन तिनाकिन" ।[11]

बनारस घराना – संस्थापक – पं. रामसहाय

इस घराने के संस्थापक पं. रामसहायजी ने लखनौ घराने के खलिफा उस्ताद मोदू खाँ के पास बारह वर्ष तक तबले कि शिक्षा ग्रहण की और खुदकी अपनी एक नयी शैली का निर्माण किया जिसे हम बनारस घराने के नाम से जानते है। बनारस घराने पर पखावज की वादनशैली का प्रभाव होने की वजह से इस घराने में दायाँ – बायाँ पर खुले हाथ का उपयोग किया जाता है।

बनारस घराने में खुले बाज में बजनेवाली रचनाओं के साथ ही बंद बाज में बजनेवाली रचनाएँ याने कायदा, रेले इत्यादी का भी समावेश अपने वादन में किया है। बनारस में ताल तीनताल के ठेके में से पेशकार की निर्मिती की जाती है इसमें ठेके के आलाप या ठेके की बाँट को बजाया जाता है जिसमें ताल के ठेके में विभिन्न बोलों को भरकर उसका विस्तार होता है। इस घराने में उठान, फर्द, परन, बाँट, लग्गी, लडी, स्तुतिपरन आदि रचनाओं के लिए भी ये घराना अधिक जाना जाता है। बनारस में जनानी तथा मर्दानी गतों का उपयोग भी काफी लोकप्रिय है। बनारस घराने में अपने वादन का प्रारंभ उठान बजाकर किया जाता है। इस घराने में टीप के तबले का प्रयोग अधिक किया जाता है। इस घराने के वादक बायाँ अन्य घराने के वादकोंसे थोडा अलग याने बायाँ का मेदान श्रोताओं की तरफ रखते हुए बजाते है। उदा. ताल–तिनताल में बाँट का मुख निम्नानुसार –

x "धीगे धीना तिरकिट धीना । 2 धागे नाती केती नाडा ।

0 तीके तीना तिरकिट तीना । 3 धागे नाती गेधी नाडा" ।[12]

पंजाब घराना–संस्थापक–लाला भवानीदास

पंजाब घराने ने लखनौ, फर्रूखाबाद जैसे ही खुले बाज को अपनाया है। पंजाब घराने में कीर बक्ष एक महान पखवाज वादक थे और वे तबला भी बजाते थे उनके सुपुत्र कादरबक्ष और उनके शिष्य उस्ताद अल्लारखाँ इस घराने के ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ तबला वादक माने जाते थे। पंजाब घराने पर दिल्ली या पूरब घराने का असर दिखाई देता है। पंजाब घराने के बाज की निर्मिती संपूर्णतः पखवाज में से हुई है। पंजाब घराने के कुछ श्रेष्ठ वादकोंने पखावज वादन की कला को तबलावादन में लाकर पखावज के खुले बोलों को

बंद करके बजाने की शैली का निर्माण किया। पखवाज को खुले हाथों से बजाया जाता है, पखावज में बजाये जाने वाले हाथ का रखाव बदलकर तबले के योग्य नवीन विकास शैली का निर्माण इस घराने में किया। पंजाब घराने में भी कायदे की लंबाई जादा होती है इस कारण इस घराने में लंबछड़ कायदे बजते है। पंजाब घराने में दीपचंदी अंग के चाले याने मिश्र जाती के चालों को बजाया जाता है। उदा. ताल–तिनताल में मिश्र जाती पंजाबी चाले का मुख निम्नानुसार – (मूल रचना – करीम बक्श पेरना)

x "ततताताऽकिटतक तकिटधेतधिरधिर किट्तककिट्तागदिगन् नगधेतकिटतकताऽ ।

2 घेघेनकतधिन नाऽकेतकधिन कताऽधिन्नाऽ धिंतराऽनधाऽ ।

0 घेघेनकेऽकिटतक तकिटधेतधेत धडन्नाकिट्तक ताकिटतकधेतकत् ।

3 ताऽधिना्किटतक ताकिटतकधिरधिरकिटतक ताकिटतकधिरधिरकिटतक ताकिटतकत्कड़ान " ।[13]

नवीन परिवर्तन–

कई सालो से हम अनेक विद्वान तबला वादकोंद्वारा घरानेदार पारंपारिक तबला वादन सुनते आ रहे है। लेकिन वर्तमान समय में स्वतंत्र तबलावादन के साहित्य में और पहले के समय के घरानेदार रचनाओंके प्रस्तुतिकरन के प्रति तबलावादकों का देखने का नजरिया आजकल बदला हुवा दिखाई दे रहा है, इसकी वजह यह है की पहले की रचनाएँ भाषासमृद्ध होती थी लेकिन अब रचनाओंपर गणितीय प्रभाव अधिक दिखाई देता है। बहोतसे तबलावादक घरानेदार, पारंपारीक रचनाओंकी काँट–छाँट करके अपने वादन की प्रस्तुति करते हुये दिखाई दे रहे है। पहले के समय बुजुर्ग तबलावादक अधिकतर ताल त्रिताल, झपताल, एकताल जैसे छंदमात्रिक तालो में तबलावादन पेश करते थे लेकिन आजकल कई वादक इन तालो के अलावा विषम मात्रा याने 7½, 8½, 9½ मात्रा के तालों में भी वादन करके अपना गणितीय प्रभुत्व दीखाने का प्रयास कर रह है। कईबार तबलावादक घराने के नामपर किसी रचना को प्रस्तुत करता है तो उस वादक ने उस रचना को बजाने की तालीम अपने गुरू से नही लीयी होती है और इन रचनाओं को केवल कहीसे सुनकर या फिर किसी का वादन देखकर, अनुमान लगाकर, गलत निकास द्वारा पेश किया जाता है।

आजकल कई तबला सिखने वाले छात्र तबले के किसी भी घराने की पारंपारीक रचना में कायदा या रेला बजाते है लेकिन वो केवल उसके बोल बजाते है। उस घराने के निकास विधी या फिर विस्तार सौंदर्य की तरफ ध्यान नही देते है। जिस घराने की रचना की प्रस्तुती हम कर रहे है उस घराने की खासीयत क्या है ? या फिर जिस घराने की रचना हम बजा रहे है उस घराने के नियमों का पालन करके बजा रहे है या नही ? उस रचना की शक्ल की तरफ ध्यान ही नही देते है इस वजह से उस रचना की प्रस्तुति करने के पश्चात भी वो रचना उतनी असरदार साबीत नहीं हो पाती है।

तबले में घरानेदार परंपरागत जो रचनाएँ बजती आ रही है वो रचनाएँ अधिकतर छंदपर आधरित होती थी लेकिन आज के तबलावादन की बहुतसी रचनाओं में 'खंड' या 'फर्शबंदी' आदि तत्त्वों का विचार करते हुये वादक नही दिखाई दे रहे है। केवल उस ताल की मात्राएँ ध्यान में लेकर उन मात्राओं में वह रचनाएँ बजाई जा रही है। उदा. ताल झपताल में कायदे का मुख निम्नानुसार–

x धाऽत्रक धिटतता । 2 धिनाधाती धागेनाधा गतिंनाघि ।

0 नात्रकधि ट्तताघि । 3 नाधातीधा गेनाधाग तिंनाकिना ।

x ताऽत्रक तिटतता । 2 किनाताती ताकेनाता केतिंनाघि ।

0 नात्रकधि ट्तताघि । 3 नाधातीधा गेनाधाग धिंनागिना ।

इस झपताल के कायदे की दुगुन करने पर 2½ के 4 समान भाग जो फर्शबंदी के लिए आवश्यक है वो नहीं हो रहे है लेकिन अक्षर संख्या की दृष्टि से अगर देखा जाये तो 19+21 कूल लघू मिलाके 40 लघू अक्षरों की संख्या हो जाती है। मात्रा की हिसाब से देखा जाए तो यह रचना सही है, लेकीन यह रचना चतुरश्र जाती में होकर भी हाथ पर ताली देकर पढंत करते वक्त कठिनाई महसूस होती है और वर्तमान समय में इस तरह के विस्तारक्षम रचनाओं का निर्माण अधिकतर होता हुआ दिखाई दे रहा है"।[14] फलतः ऐसे रचनाओं का कोई निश्चित आकार ही नही होता और रचना का वैसा आकार हो भी तो 1–2 पलटों में ही वह समाप्त हो जाता है और बजती केवल मात्राएँ ही है।

पहले के समय में शिष्यों में जो संयम, ईर्ष्या एवं चिकाटी होती थी वो आजकल कम होती हुई दिखाई दे रही है। पहले शिष्य को बारह साल तक कठिन रियाज करने के बाद भी किसी भी मैफिल में जाने की अनुमती नही होती थी मगर अब सिखना शुरू करने के बाद दो सालो में ही शिष्य को मंचपर आने की जल्दी रहती है। आजकल वादक का विज्ञापर पर ज्यादा ध्यान दिखाई दे रहा है और जो खानदानी रचनाएँ है वो दुर्लभ होती हुयी दिखाई दे रही है। अस्सल घरंदाज बंदिशो को तोड मोड कर उन्हे एकजूट करके किसी पूर्वजोंके नाम लगाकर श्रोताओं के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। इस वजह से आजकल परंपरासे चली आ रही घरानेदार रचनाओंका कला प्रस्तुतिकरण दुर्लभ होता हुआ दिर्खाइ दे रहा है ।

पं. सुधीर र्माइणकरजी अपने मराठी अनुवादीत पुस्तक "संगीत कला आणि शिक्षण' में लिखते है की 'घरानेदार सोलो तबला वादन का प्रदर्शन करनेवाले महान तबलावादक 1960 तक ही अपने घरानेदार वादन का प्रदर्शन करते थे परन्तु उ. अमीर हुसेन, उ. हब्बीबुद्दीन, पं. कंठे महाराज, पं. अनोखेलाल इनके मृत्यु के पश्चात दर्जेदार घरानेदार वादनशैली समाप्त होती हुई दिखाई दे रही है। इन कलाकारों के जाने के बाद आज के पिढी के नये कलाकारों के लिए घरानेदार आदर्श वादनशैली आदर्श नही रही है। इसवजह से नये पिढी के कलाकारों का वादन तुलनात्मक दृष्टि से अगर देखा जाये तो अलग ही बनता हुवा दिखाई दे रहा है" ।[15]

"वर्तमान समय में नियम का पालन गिने चुने कलाकार ही कर रहे हैं। आज के आजाद भारत में सभी आजाद हैं। इसलिए अब घरानें की बातें केवल पुस्तकों तक ही सीमीत रह गई है। अतः आज का बाज आदान प्रदान, प्युजन, रिकॉर्डिंग द्वारा नकल आदी के कारण खिचडी बाज बन कर रह गया है। आश्चर्य तो यह है कि अनेक कलाकार घराने की मान्यता स्वीकार करने के पक्ष में नही है जो अत्यन्त दुःख का विषय है। वास्तव में घराने का एक नियमित बन्धन होता है जिसमें कुछ आधुनिक कलाकार घुटन सा अनुभव करते हैं क्योंकि उसमें अधिक समय तक उचित साधना करते रहने की आवश्यकता होती है जिसमें पूर्व विद्वानों की रचित बन्दिशों को पूर्ववत प्रस्तुति ही मान्य है परन्तु अतिशय प्रसिध्द तथा अर्थ प्राप्त करने की लालसा से घर और घराने की परंपरा को छोड, कर आगे भाग रहे हैं जो चिन्ता का विषय बनता जा रहा है" ।[16] पहले के समय एक घराने के

कलाकार को दुसरे घराने के कलाकार को सुनने की अनुमती नही होती थी लेकिन आज वर्तमान में सभी घराने के वादकों का वादन सुन भी सकते है एवं सभी घरानों की विशेषताओं को अपने वादन में समाविष्ट करके प्रस्तुत भी कर सकते है। आजकल हमें दो अलग–अलग घरानों के वादक एकसाथ सहवादन करते हुये भी दिखाई देते है। दो घरानों के वादकोंद्वारा प्रस्तुत किया गया तबला सहवादन आज अत्यंत लोकप्रिय भी होने लगा है।

निष्कर्ष–

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते है की तबले में गुरू–शिष्य परंपरा द्वारा हमे घरानो के रूप में जो अमुल्य ज्ञान मिला है उसे एक पीढ़ी से दुसरी पीढ़ी तक पहुचाना हमारा कर्तव्य है। संगीत जगत में घरानो का अस्तित्व संगीत की सुरक्षा विकास व समृध्दि की पहचान है। घराने के सभी वादकोंने अपनी कठोर साधना, असीम गुरूभक्ति, और तालिम से संगीत को जीवित रखा है। यदि घराने न बने होते तो संगीत की परम्परागत विद्या अवश्य ही मध्ययुग और अन्ग्रेजों के युग में नष्ट हो गइ होती। घरानों ने ही हमारी सांगीतिक संस्कृति की रक्षा की है और कला के रक्षक का उत्तदायित्व निभाया है। आज भारत में जितने भी महान कलाकार हैं वे सब घरानों की ही देन हैं।

तबले में सिध्दहस्त विद्वान कलाकारों के निर्माण में घरानेदार कलाकारो को अनन्य साधारण महत्व है। कालक्रम में तबले के घरानेदार परंपरा के दोषो को दूर करके एक नया रूप जो आधुनिक काल में मिला है जिसकी वजह से कलाकारों के प्रगति में आनेवाली बाधाएँ बहोत अधिक प्रमाणसे कम हुई है। तबला वाद्य का प्रचार एवं प्रसार करने में तथा तबले के अच्छे जानकार निर्माण करने में, तबला वाद्य को प्रतिष्ठा दिलाने में तबले के सभी घरानों की भूमिका अत्यंत सराहणीय रही है। तबले की इन घरानों की वजह से ही ये परंपरा एवं शैली कई पिढीयोंसे एक व्यक्ति से दुसरी क्यक्तिगक हस्तांतरित होती आ रही है। तबले के इन घरानो ने ही हमारे प्राचीन सांगीतिक कला के संरक्षक की भूमिका निभायी है। यदि तबले के घराने ना होते तो आज हमारी पारंपारीक बंदीशे ना रहती और पिछले युगों की तबले की परंपरा का कोई भी ज्ञान आज नही हो पाता और पारंपारिक रचनाएँ आज के पिढीतक नही पहुँच पाती। तबले के घराने : परंपरागत वादन प्रणाली एवं नवीन परिवर्तन द्वारा तबले के सभी घरानोंकी परंपरा का संरक्षण करना और इसे आगे के

पिढीतक पोहचाना एवं संभालकर रखने का प्रयास इस शोधपत्र के माध्यम से शोधार्थी द्वारा किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. दंडगे, आमोद "सर्वांगीण तबला", मराठी, भैरव प्रकाशन, कोल्हापूर, चतुर्थ आवृत्ती, 2016, पृ. 55
2. दंडगे, आमोद "सर्वांगीण तबला", मराठी, भैरव प्रकाशन, कोल्हापूर, चतुर्थ आवृत्ती, 2016, पृ. 54
3. मिश्रा, विजयशंकर "तबला पुराण" हिंदी, कनिष्क पब्लिशर्स नंइ दिल्ली, द्वितीय संस्कारण, पृ. 305
4. मुलगावंकर, अरविंद "तबला" मराठी, पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबइ, तृतीय आवृत्ती 2016, पृ. 260
5. मिश्रा, विजयशंकर "तबला पुराण" हिंदी, कनिष्क पब्लिशर्स नंइ दिल्ली, द्वितीय संस्कारण 2012, पृ. 306
6. मुलगावंकर, अरविंद "तबला" मराठी, पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबइ, तृतीय आवृत्ती 2016, पृ. 290
7. https://hi.m.wikipedia.org/wiki/
8. साक्षात्कार श्री. आमोद दंडगे (ज्येष्ठ तबला गुरू) स्थानः कलांगन, मडगांव, गोवा 20 आ'क्टोंबर 2018
9. साक्षात्कार श्री. आमोद दंडगे, स्थानः कलांगन, मडगांव, गोवा 20 अकतूबर 2018

10. दंडगे, आमोद "परिक्षार्थ तबलाःविशारद", मराठी, भैरव प्रकाशन,
कोल्हापूर, प्रथम आवृत्ती 2014, पृ. 109

11. दंडगे, आमोद "सर्वांगीण तबला", मराठी, भैरव प्रकाशन,
कोल्हापूर, चतुर्थ आवृत्ती 2016, पृ. 58

12. मिश्रा, छोटेलाल "तबला ग्रंथ" हिंदी, कनिष्क पब्लिशस
नई दिल्ली, प्रथम संस्कारण 2006, पृ. 39

13. मुलगावंकर, अरविंद "तबला" मराठी, पॉप्युलर प्रकाशन,
मुंबई, तृतीय आवृत्ती 2016 पृ. 402

14. साक्षात्कार प्रो. डॉ . अजय अष्टपूत्रे (ज्येष्ठ तबला वादक, मार्गदर्शक)
स्थान : बडोदा, गुजरात, 5 आ'क्टोंबर 2018

15. र्माइणकर, सुधीर "संगीत कला आणि शिक्षण", मराठी, संस्कार प्रकाशन,
मुंबई, प्रथम आवृत्ती 2014, पृ. 60

16. मिश्रा, विजयशंकर "ताल प्रबन्ध" हिंदी, कनिष्क पब्लिशर्स
नई दिल्ली, प्रथम आवृत्ती 2006, पृ. 23

*****